प्राचीन भारतीय हिन्दू संस्कृति का महत्व और उसकी विशेषताएँ

Shveta Kumari[1]* Dr. Ramakant Sharma[2]

[1] Researsch Scholar

[2] Research Supervisor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

***सारांश:-** भारतीय राष्ट्रीयता का मूलाश्रय तो, सदा से संस्कृति ही रहा है। संस्कृति का सामान्य अर्थ आदतों, अभिवृतियों और मूल्यों के न्यूनाधिक संगठित और दृढ़ ताने-बाने से लगाया जाता है जो एक पीढी से दूसरी पीढी को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार संस्कृति में किसी समाज के किसी भाग के लोगों का पारस्परिक व्यवहार, उनके विश्वास और भौतिक वस्तुएँ आती हैं। संस्कृति को लेखकों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। कुछ विचारक संस्कृति में उन सभी तत्वों को सम्मिलित करते है जो मनुष्यों को समाज में परस्पर संयुक्त करते है। कुछ लेखक संकुचित अर्थ लेते हैं और इसमें केवल अभौतिक अंगों को ही लेते है। वेदों के केवल सामाजिक विचार ही नहीं हैं बल्कि तत्कालीन संगीत, कला और वाद्ययन्त्रों की भी चर्चा की गई है। यजुर्वेद ने वाद्ययन्त्रों की व्यवस्था कर संगीत के संबंध में प्रारम्भिक चर्चा की गई है जो सामवेद में आकर विकसित हो गई है। सम्पूर्ण सामवेद गायन के सिद्धान्तों के आधार पर रचित है।*

***शब्द संकेत:-** भारतीय हिन्दू संस्कृति, महत्व और उसकी विशेषताएँ*

---------------------------------X---------------------------------

भूमिका:-

हिन्दू संस्कृति के इतिहास में सिन्धु नदी की अविस्मरणीय भूमिका है। इस शक्तिशाली, कलकलनिनादनी पावन नदी ने न केवल उनके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक जीवन पर ही अपनी अमिट छाप छोड़ी है, अपितु उनके देश के नामकरण में भी अपना अक्षय योगदान किया है। पहले सप्तसिन्धु, फिर ‘सिन्धु स्थान’ और अब ‘हिन्दू स्थान’ सब में ही ‘सिन्धु’ के नाम का प्रताप है। अतः हिन्दू संस्कृति एक विशुद्ध भू-सांस्कृतिक अवधारणा की परिचायक है। इस प्रकार हर भारतीय नागरिक सांस्कृतिक रूप में एक ‘हिन्दू’ है। संस्कृति के अर्थ को भली भांति समझने के लिए इसका ‘सभ्यता’ से विभेद करना वांछनीय होगा। लेखकों ने सभ्यता की विभिन्न अवधारणाओं का उल्लेख किया है। ऐसा विचार किया जाता है कि सभ्यता का आरम्भ उस समय हुआ, जब लेखन एवं धातु का आविष्कार हुआ। क्योंकि इतिहास का आरम्भ लेखन के साथ हुआ, अतएव सभ्यता का आरम्भ भी उसी प्रकार हुआ। आगबर्न एवं निमकाफ के अनुसार, सभ्यता अति-जैविक (Super –Organic) संस्कृति का उत्तरीय पक्ष है। कुछ लेखकों ने सभ्यता का आधार नातेदारी अथवा कुलीन संगठन को न मानकर सिविल संगठन को माना है क्योंकि सिविल संगठन बडे नगरों में अधिक पाया जाता था।, अतएव इन नगरों के निवासियों को ’सभ्य’ कहा जाने लगा। ए.ए.गोल्डनवीजर (A.A. Goldenweiser) ने सभ्यता को ’संस्कृति का समानार्थक माना है तथा इस शब्द का प्रयोग अशिक्षित लोगों के लिए किया।

संस्कृति का अर्थ व परिभाषाएँ

संस्कृति चूंकि मानवीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है और इसका संबंध मनुष्य के जीवन के अनेक पक्षों से है, अतः इसे परिभाषित करना आसान नहीं है। ‘संस्कृति’ का प्रयोग अनेक विद्वानों ने अनेक अर्थो में किया। ए. एल. क्रोबर एवं क्लुक्खौन ने स्वीकृति की परिभाषाओं का संकलन करके बताया कि इस षब्द की एक सौ आठ परिभाषाएँ है।

‘संस्कृति’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘संस्कृत’ से हुई है। ‘संस्कृति एवं संस्कत’ दोनों ही संस्कार से बने है। संस्कार का अर्थ है कुछ ‘कृत्यों की पूर्ति करना’ एक हिन्दू अपने जीवन में अनेक संस्कारों को सम्पन्न करता है। अतः इस दृष्टिकोण से

www.ignited.in

संस्कृति का आशय है विभिन्न संस्कारों द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति। संस्कारों को सम्पन्न करके ही एक मानव सामाजिक प्राणी बनता है। टायलर के अनुसार- "संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा तथा समाज के सदस्य के रुप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएँ सम्मिलित हैं।"

मैलिनाव्स्की के अनुसार- "संस्कृति मनुष्य की कृति है तथा एक साधन है जिसके द्वारा वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करता है।"

रैडफील्ड के अनुसार- "संस्कृति ऐसे परम्परागत विश्वासों के संगठित समूह को कहते है जो कला एवं कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित होते है तथा जो परम्परा द्वारा चलते रहते हैं और किसी मानव-समूह की विशेषता को चित्रित करते हैं।"

जोसेफ पाईपर-के अनुसार- "संस्कृति संसार की सभी भौतिक वस्तुओं तथा उन उपहारों एवं गुणों का सार है जो मनुष्य की सम्पति होते हुए भी उसकी आवश्यकतओं एवं इच्छाओं के तात्कालिक क्षेत्र से परे है।"

सी.सी. नार्थ के अनुसार- "संस्कृति में मनुष्य द्वारा निर्मित वे उपकरण सम्मिलित हैं, जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करते है।"

ई.वी.डी. राजर्टी के अनुसार- "संस्कृति विचार एवं ज्ञान दोनों, व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक का समूह है जो केवल मनुष्यों के पास ही हो सकता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्षः कह सकते है कि संस्कृति भौतिक और अभौतिक तत्वों की वह जटिल सम्पूर्णता है जिसे हम समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करते है और जिसमें रहते हुए हम अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते है।

संस्कृति का महत्व

संस्कृति का व्यक्ति के लिए महत्व - व्यक्ति के लिए संस्कृति का मूल्य अपार और असीमित हैं। संस्कृति व्यक्ति के सामाजिक जीवन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है, संस्कृति व्यक्तित्व का विकास करती है, उसका संस्कृतीकरण करती है। व्यक्ति के लिए संस्कृति के महान् कार्यों अथवा लाभ को हम सार रुप में इस प्रकार रख सकते हैं-

1. **संस्कृति व्यक्तित्व के अध्ययन का केन्द्र-बिन्दू है-** नेतृत्व विज्ञानी के लिए मानव जाति की समूची विरासत संस्कृति है जबकि एक संस्कृति कुछ विशेष लोगों की सामाजिक विरासत की द्योतक है। अस्तित्व-संस्कृति का संबंध सब समाजशास्त्रियों, समाजिक नेतृत्व-वैज्ञानिकों और सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के लिए प्राथमिक महत्व का विषय हैं। संस्कृति और व्यक्तित्व के मध्य जो संबंध है, उसमें दो बातें निहित है-एक ओर व्यक्ति को उपलब्ध हाने वाली सामाजिक विरासत उसके प्रति चेतन और अचेतन रुप में उसकी अनुक्रिया होती है और दूसरी ओर विशिष्ट व्यक्ति का समग्र चरित्र। संस्कृति का रुप मूलतः व्यक्तियों की व्यापक रचनाओं को निर्धारित करता है जो संस्कृति के संरुप का प्रमाण देते हैं और उसे स्थायी बनाने का प्रयास करने में कार्य करते हैं।

2. **संस्कृति मनुष्य को मानव बनाती है-** संस्कृति-विहीन व्यक्ति पशु के समान है। वह संस्कृति ही है जो मनुष्य को मानव बनाती हैं, उसके आचरण को नियमित करते हुए समूह-जीवनयापन के लिए तैयार करती है। मानव कहलाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य सांस्कृतिक धारा में प्रवाहित हो। संस्कृति मनुष्य के समक्ष उसके जीवन का एक पूरा 'डिजाइन' प्रस्तुत करती है। यह मनुष्य को बताती है कि वह किस प्रकार का भोजन करें, किस प्रकार के वस्त्र पहने, अपने साथियों के साथ कैसा व्यवहार करे, लोगों से कैसे बातचीत करे और दूसरों के साथ किस तरह सहयोग या प्रतियोगिता करे। समाज में जीवन कैसे बिताए-यह संस्कृति ही सिखाती है। सामाजिक जीवन निभाने के लिए जो भी गुण अपैक्षित हैं, मनुष्य को उसकी संस्कृति से मिलते हैं।

3. **संस्कृति व्यक्तित्व का विकास करती है-** 'संस्कृतिकरण' द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति के तत्वों को अपनाता है। इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपने 'शारीरिक-मानसिक विकास की क्रमिक स्थितियों में अपनी स्थिति और कार्यों के अनुकूल सामान्यकों को आत्मीकृत करता हैं। इस तरह उस विचार, व्यवहार और कार्यों के सामाजिक औचित्य का मानदण्ड मिल जाता है, और वह संस्कृति की स्वीकृत धाराओं में अपना स्थान पा जाता है। इस तरह व्यक्ति एक ओर मानव और समाज तथा दूसरी ओर मानव और अदृष्य जगत के परस्परिक संबंधों में अपना स्थान निर्धारित करता है साथ ही मानव ओश्र प्रकृति के संबंधों के अन्तर्गत आने वाला आवष्यक विचार, व्यवहार और कार्य-प्रकारों से अपने अनुकूल सामान्यकों की उपलब्धि भी उसे होती है।

4. **संस्कृति जटिल स्थितियों का समाधान प्रस्तुत करती है-** संस्कृति मनुष्य को जटिल स्थितियों के समाधान हेतु व्यवहार का ढंग प्रस्तुत करती है। यह मनुष्य को इतना अधिक प्रभावित किए रहती है कि उसे स्वंय को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरुप रखने में किसी बाह्य शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। उसके कार्य स्वाभाविक बन जाते हैं।

5. **संस्कृति कुछ परिस्थितियों पर परम्परागत निर्वाचन प्रस्तुत करती है-** व्यक्ति के लिए संस्कृति का एक महत्वपूर्ण कार्य कुछ परिस्थितियों का परम्परागत निर्वाचन प्रस्तुत करना है। संस्कृति के माध्यम से व्यक्ति अनेक परिस्थितियों के परम्परागत निर्वाचक से परिचित हो जाता है और तद्नुसार अपना कार्य और व्यवहार निश्चित करता है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिए संस्कृति के कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, उसी प्रकार समूह के लिए भी संस्कृति अनेक दृष्टियों से उपयोगी है-

1. संस्कृति व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर सामूहिक भावना उत्पन्न करती है- संस्कृति व्यक्ति के दृष्टिकोण को उदार और व्यापक बनाती है, उसे अपने लिए ही नहीं वरन् दूसरों के लिए सोचना सिखाती है और व्यक्ति को इस बात का प्रशिक्षण देती है कि वह स्वंय को एक विशाल मानव समूह का अंग समझे। संस्कृति व्यक्ति को परिवार, राज्य, वर्ग आदि की अवधारणाओं से परिचित कराती है, समन्वय और श्रम-विभाजन को सम्भव बनाती है, व्यक्तियों के सहयोग हेतु नियमों की व्याख्या द्वारा व्यक्ति को नई दृष्टि देती है।

2. संस्कृति सामाजिक संबंधों को बनाए रखने में सहयोग देती है- संस्कृति के अभाव में किसी प्रकार का समूह जीवन सम्भव नहीं है। संस्कृति मूल्यों एवं आदर्शों की स्थापना करती है। यह लोगों के व्यवहार को नियमित करके तथा अनुशासन निवास एवं काम भावना संबंधी प्राथमिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि द्वारा समूह-जीवन को स्थिर रखने में समर्थ होती है। वस्तुतः यदि सांस्कृतिक विनियम न होते तो मनुष्य का जीवन एकाकी, क्षुद्र एवं पशुवत होता।

3. संस्कृति नवीन आवश्यकताओं को जन्म देती है- समूह के लिए संस्कृति का एक महत्वपूर्ण कार्य नई आवश्यकताओं और नई प्रेरणाओं को उत्पन्न करना है। संस्कृति ज्ञान पिपासा को उत्पन्न करती है और आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की व्यवस्था करती है। संस्कृति के माध्यम से समूह के सदस्यों की नेतिक, धार्मिक, कलात्मक, सौन्दर्यात्मक और अन्य हितों की सन्तुष्टि होती है। सांस्कृतिक संघ हमें क्लब, थियेटर चर्च-समूह, परिवार आदि के प्राथमिक केन्द्रों की ओर ले जाता है। सांस्कृति संघ में सांस्कृतिक और सामाजिक तत्व मिश्रित होते है जिनसे हमारी अनेक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है । मानव-समूह संस्कृति की रीढ़ है और सांस्कृतिक मूल्यों में किंचित् भी परिवर्तन न केवल व्यक्तित्व वरन् समूह संरचना को भी प्रभावित करता है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

वेदों के केवल सामाजिक विचार ही नहीं हैं बल्कि तत्कालीन संगीत, कला और वाद्ययन्त्रों की भी चर्चा की गई है। यजुर्वेद ने वाद्ययन्त्रों की व्यवस्था कर संगीत के संबंध में प्रारम्भिक चर्चा की गई है जो सामवेद में आकर विकसित हो गई है। सम्पूर्ण सामवेद गायन के सिद्धान्तों के आधार पर रचित है। अरविन्दों के उद्धत उक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय वैदिक कालीन युग आध्यात्मिक रुप से अत्यन्त विकसित था और सारे चिन्तन का आधार धर्म और आत्मा से संबंधित था। सामाजिक संस्थाओं से संबंधित विचार भी इतने ही महत्वपूर्ण तरीके से किए गये है। भारतीय कालीन संस्कृति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **धार्मिक विचार-** वैदिक धर्म केवल अलौकिक और पारलौकिक नहीं बल्कि लौकिक और सामाजिक भी है। इन ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिये करता है। व्यक्ति, परवार और समाज के पोषण के लिए नियमोचित रुप से किये गये कर्मों को ही धर्म कहा जाता है। इन विचारों में नैतिकता का स्थान प्रधान है, जिसमें दूसरों के प्रति दया, सत्य, भाषण एवं सज्जनता पर विशेष ध्यान दिया गया है। व्यक्ति को अपने परिवार, पितर, गोत्र, नदियों तथा अन्य देवी-देवताओं के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, इसका विषद वर्णन वेदों से मिलता है।

2. **सामजिक संस्थाओं संबंधी विचार-** संस्थाओं का आरम्भ मानव संगठनों के आरम्भ से माना जाता है जो विचारों और सभ्यता के विकास के साथ और भी जटिल होते जाते हैं कूले ने इसे “सार्वजनिक

www.ignited.in

मस्तिष्क का एक निश्चित और स्थापित स्वरुप" माना है। वैदिक काल में सामाजिक संस्थाओं से संबंधित विषद चर्चा की गई है। इसमें मुख्य रुप से आश्रम व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, पारिवारिक, विवाह और सन्तानोत्पति आदि संस्थायें आती है।

3. **आश्रम व्यवस्था -** वैदिक कालीन विचारकों ने मनुष्य के जीवन को चार उपविभागों किया है। बचपन, किशोरवस्था, युवावस्था और वृदावस्था के रुप में किया है। वैदिककालीन व्यवस्था में इसे आश्रम व्यवस्था कहते है।

4. **वर्ण व्यवस्था -** आज जिसे हम जाति व्यवस्था औश्र वर्गीकरण का सिद्वान्त मानते है उसे ही वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था कहा गया। श्रम विभाजन के द्वारा कर्तव्य निर्धारण को सिद्वान्त मानकर वर्ण व्यवस्था की गई है। यह वर्ण व्यवस्था सावयविक सिद्वान्त पर आधारित है। जिस प्रकार मनुष्य का 'शरीर अलग-अलग काम करता है, उसी प्रकार समाज के व्यक्तियों को भी अलग अलग कर्तव्य करते पड़ते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था वैदिक काल में देखने को मिलती है।

5. **विवाह, परिवार और सन्तानोत्पति -** वैदिककाल में पितृसत्तात्मक परिवारों को ही मान्य परिवार व्यवस्था मानी जाती रही है जिसे 'कुल' क संज्ञा दी गई है। पिता कुल का मुखिया माना गया तथा प्रधान गुरु। कुल की प्रथा कके अनुसार सोलह संस्कार माने गये, जिसमें विवाह एक संस्कार हैं यह दो विशमलिंगी व्यक्तियों का स्थायी मिलन माना गया है। पारस्कार गृह सूत्र में पति पत्नि के संयोग को एक मौलिक सामाजिक मूल्य माना गया है, जिसमें पति-पत्नि और पत्नि -पति से कहती है, "मैं अपनी सांस तुम्हारी सांसो से, अपनी हडिडयों को तुम्हारी हडिडयों से, अपना मांस तुम्हारे मांस से और अपना चमड़ा तुम्हारे चमडे से मिला रही हूँ।" इस प्रकार का विवाह अनुबन्ध नहीं वरन् एक पवित्र सामाजिक एवं धार्मिक कृत्य माना जाता है। सन्तानोत्पति भी धार्मिक कृत्य है जिसमें व्यक्ति पितृऋण से मुक्त हो पाता है।

6. **वैदिक कालीन राज्य व्यवस्था-** वैदिक काल में राज्य व्यवस्था और राजधर्म पर विषद चर्चा की गई है। राजा, मंत्री तथा प्रजा के अलग-अलग एक दूसरे के प्रति औश्र ईश्वर के प्रति क्या कर्तव्य होते है। इस बात की विस्तृत चर्चा ऋग्वेद, अर्थर्ववेद, तैत्तरेय, संहिता आदि ग्रन्थों में की गयी है। वैदिक ऋचाओं में सर्व सत्ता सम्पन्न एक राज की व्यवस्था दी गई है। जिसके लिए अधिराजा, राजाधिराज सम्राट आदि की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार शुक्रनीति में नृपति, सामन्त, राजा, महाराजा, सार्वभौम, विराट आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। "आसमुद्राज्ञीतिषः "राजा सबसे बडा माना जाता है जो एतरेय ब्राहमण् के अनुसार, "प्राकृतिक सीमाओं, अविभाजित सीमा तथा समुद्रों पर" शासन करता है। राज्यों में इस प्रकार की व्यवस्था की गई है, जिसमें अपना कर्तव्य पालन करते हुए सभी समान रुप से "एक समान खाते -पीते हैं एक साथ परस्पर संबंधित रहते हैं, जिनका हृदय एक दूसरे के प्रति द्वेश रहित होता है, तथा एक-दूसरे को प्यार करते है। सबके विचार, हृदय और मन समान है तथा परस्पर सहयोग को आधार मानकर जीवनयापन करें। अथर्ववेद में दिए गये इस आदर्श राज्य की कल्पना का ही आज समाजवादी समाज की स्थापना का आधार माना गया है, जिसकी व्यवस्था हजारों वर्ष पूर्व वेदों में की गयी है। इसके अतिरिक्त राजा को ऐसा होना चाहिए जिसके राज्य में प्रजा सुखी हो, जिसका राज्य 'हिमवत् समुद्रान्त' अर्थात् हिमालय से समुद्र तक विस्तृत हो और जिसके अधिकारों को कोई चेतावनी न दे सके। वैदिक कालन राज्य 'जनराज्य' कहे गये हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है प्रजा का राज्य यानी गणतन्त्र। राजा चुना जाता था और उसका राज्यभिषेक होता था। जिसे 'राजसूय' कहा जाता था। यजुर्वेद की इस व्यवस्था से पता चलता है कि वैदिक काल में गणतान्त्रिक व्यवस्था थी। बाद में राज जन्मना होने लगा जिसने तानाशाही या राजतन्त्र का रुप धारण कर लिया।

इस प्रकार वैदिक कालीन चिन्तन का आरम्भ मनुष्य की उस अवस्था से होता है, जहाँ वह बर्बरता से आगे बढकर सामाजिक प्राणी बना, व्यक्तिगत स्वार्थ से अलग सामाजिक स्वार्थ को मानने लगा, आखेट, और गरीबी से आगे 'संग्रह' 'सम्मान' और 'संगठन' की इच्छा से प्रेरित हुआ। इस विकास की मूल प्रवृत्तियों को आधार बनाकर मनुष्य में विकसित होने की इच्छा जाग्रत हुई और उसने अपना चिन्तन इस और किया और सामाजिक विचारों का प्रतिपादन किया। "मनुष्य न तो केवल बौद्धिक प्राणी है, न ही मात्र पशु है; और न ही केवल हृदय या आत्मा हैं। पूर्ण मनुष्य बनने के लिए तीनों का उचित और सुसंगत मेल आवश्यक हैं"

बापू यह भी मानते थे कि बच्चों को कोई उपयोगी व्यवसाय सिखाना केवल जीविकोपार्जन के साधन के रुप में ही अनवार्य नहीं है, बल्कि उनकी मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक

www.ignited.in

योग्यता का परिष्कार करने के लिए भी अनिवार्य हैं। इसे बच्चों को अपने पर्यावरण और मानव तथा उसके सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश के बीच सामंजस्य बनाए रखने की जरुरत के बारे में बताना चाहिए। मैं समझता हूँ कि बापू की सलाह को याद रखना और उस पर ध्यान देना हमारे लिए जरुरी है।

हमारी कुछ संस्थाओं में अक्सर पुस्तकें रटने को ही पढाई कहते है और यह नीरस, घुटनभरी कक्षा तक ही सीमित रहती है। यह बच्चे की जीवन-शक्ति, उसके ओज ओर उत्साह को नष्ट कर देती है उसमें चिंता तथा डर की भावना पैदा करती है। बच्चे की स्वाभाविक रचनात्मकता और पहल शक्ति मोटी-मोटी पाठय पुस्तकों ओर अनावश्यक गृहकार्य के बोझ तले दम तोड़ देती है। अनौचारिक शैक्षिक क्रियाकलापों को पाठयेतर क्रियाकलाप' कहा जाता है। अर्थात् ऐसे क्रियाकलाप, जो स्कूल में, सामान्य पाठयचर्या के भाग नहीं है; बल्कि उसके अतिरिक्त हैं।

मेरी धारणा है कि शिक्षा को सही अर्थ में प्रभावी होने के लिए आनंददायक अनुभव होना चाहिए । ऐसा अनुभव कि बच्चे उत्सुकता से स्कूल की प्रतीक्षा करें। शिक्षा किताबी विद्या और पाठयेतर क्रियाकलापों का सुसंगत संतुलन हानो चाहिए। इसके लिए बहुशास्त्रीय उपागम की जरुरत है जो बच्चे के मन में सहनशीलता, विरासत के बारे में जानकारी पैदा करें; बच्चों को आधुनिक कला-कौशल और ज्ञान से लैस करे; और इस प्रकार उन्हें जिम्मेदार नागरिक के रुप में हितकर और उत्पादनकारी जीवन के लिए तैयार करे।

यदि मैं मौलाना आजाद के शब्दों में कहूं तो शिक्षक संपूर्ण व्यक्ति बनाने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। शिक्षक आचार्य है, जो उदाहरण और अपने आचरण से सिखाते हैं। यही कारण है कि उनका सम्मान किया जाता है। शिक्षकों को अपनी बहुवादी विरासत और अपनी परंपरा के शाश्वत में मूल्यों की गंभीर जानकारी होनी चाहिए ताकि वे छात्रों को यह ज्ञान दे सकें।

सांस्कृतिक संसाधन और प्रशिक्षण केंन्द्र हमारे शिक्षकों को ऐसे सांधनों और सुविज्ञता से लैस करने के मूल्यवान काम में जूटा है, जिससे वे जो शिक्षा दें, उसकी जड़ें हमारी सांस्कृतिक विरासत में हों। केंन्द्र का शिक्षक प्रशिक्षण पद्धति हमारे संगीत, नृत्य लोक और जन जातीय कला, साहित्य एवं हस्तशिल्प की जीवंत परंपरा की भाषा शैली और रुपविधान का उपयोग करती है। यह शिक्षकों को सुपरिचित सांस्कृतिक मुहावरों के प्रयोग से आधुनिक शिक्षा प्रदान करने के लिए तैयार कर रहा है।

निष्कर्ष

मुझे खुशी है कि सांस्कृति संसाधन और प्रशिक्षण केंन्द्र ने शिक्षकों के लिए अपने प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विख्यात कलाकारों, अभिनेताओं और शिल्पकारों, का सहयोग किया है। इस संदर्भ में मैं राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा शुरु किए गए अच्छे काम का स्मरण कराना चाहूँगा। मिशन ने वयस्क साक्षरता को बढ़ाया देने के लिए इस अनुभव संपदा का उपयोग करें। हमारी सभ्यता के मूल्यों के प्रचार - प्रसार में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मैं सुझाव देना चाहूँगा कि हमें महिला शिक्षकों के प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वे लड़कियाँ लड़कों से काफी पीछे है। इससे लड़कियों को स्कूल आने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा, विशेषतः ऐसे समुदायों और क्षेत्रों में, जहाँ पुरुष शिक्षकों के कारण उन्हें स्कूल आने की अनुमति न हो। सांस्कृति संसाधन और प्रशिक्षण केंन्द्र मुद्रित और दृष्य-श्रव्य प्रशिक्षण सामग्री का एक मूल्यवान संसाधन बैंक तैयार कर रहा है। शिक्षक इसका उपयोग कर सकते हैं। इस सामग्री को अधिक रोचक और प्रभावी बनाने के लिए इसका निरंतर परिवर्धन, संशोधन करते रहना चाहिए। मुझे विश्वास है कि इन अध्यापन साधनों की विषयवस्तु और किस्म सुधारने में सांस्कृति संसाधन और प्रशिक्षण केन्द्र गैर-सरकारी संगठनों से भी सहायता लेगा। सांस्कृतिक संसाधन और प्रशिक्षण केन्द्र संस्कृति और शिक्षा के बीच मूलभूत संबंध बढाकर अमूल्य सेवा कर रहा है। यह हमारी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा कर रहा है, और इसे हमारी, जनता के जीवन का जीवंत और अभिन्न अंग बना रहा है। मैने इस संस्था को पिछले वर्षों में उन्नति करते देखा है। मैं उनके महान् प्रयासों की सफलता की कामना करता हूँ।

संदर्भ -

1. शास्त्री, कलानाथ - ''संस्कृति के वातायन'' यूनिकट्रेडर्स, जयपुर 1991

2. मिश्र, करूणाशंकर - मूल्य शिक्षण भारतीय समाज में शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 2005-06

3. शर्मा, सत्या के. - ''सांस्कृतिक विरासत व शिक्षा'', बाल भवन एग्लों फतहपुरा, उदयपुर, 2005

4. शर्मा, श्रीराम एवं वांगमय - ''भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व'' अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा 1995

www.ignited.in

5. शास्त्री, इन्द्रचन्द्र - "संस्कृति के भूत" सार्वभौम संस्कृति पीठ दिल्ली, 1967

Corresponding Author

Shveta Kumari*

Researsch Scholar